आर्य चाणक्य अपने चाणक्य नीति ग्रंथमे आदर्श जीवन मुल्य विस्तारसे प्रकट करते है।

अध्याय १

दोहा-- सुमति बढावन सबहि जन, पावन नीति प्रकास ।

टिका चाणक्यनीति कर, भनत भवानीदास ॥१॥

मैं उन विष्णु भगवान को प्रणाम करके कि जो तीनों लोकों के स्वामी हैं, अनेक शास्त्रों से उद् धृत राजनीतिसमुच्चय विषयक बातें कहूंगा ॥१॥

दोहा-- तत्व सहित पढि शास्त्र यह, नर जानत सब बात ।

काज अकाज शुभाशुभहिं, मरम नीति विख्यात ॥२॥

इस नीति के विषय को शास्त्र के अनुसार अध्ययन करके सज्जन धर्मशास्त्र में कहे शुभाशुभ कार्यको जान लेते हैं ॥२॥

दोहा-- मैं सोड अब बरनन करूँ , अति हितकारक अज्ञ ।

जाके जानत हो जन, सबही विधि सर्वज्ञ ॥३॥

लोगों की भलाई के लिए मैं वह बात बताऊँगा कि जिसे समभक्त लेने मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ॥३॥

दोहा-- उपदेशत शिषमूढ कहँ; व्यभिचारिणि ढिग वास ।

अरि को करत विश्वास उर, विदुषहु लहत विनास ॥४॥

मूर्खशिष्य को उपदेश देनेसे, कर्कशा स्त्री का भरण पोषण करने से ओर दुखियों का सम्पर्क रखने से समझदार मनुष्य को भी दुःखी होना पडता है ॥४॥

दोहा-- भामिनी दुष्टा मित्र शठ, प्रति उत्तरदा भृत्य।

अहि युत बसत अगार में, सब विधि मरिबो सत्य ॥५॥

जिस मनुष्य की स्त्री दुष्टा है, नौकर उत्तर देनेवाला (मुँह लगा) है और जिस घर में साँप रहता है उस घरमें जो रह रहा है तो निश्चय है कि किसीन किसी रोज उसकी मौत होगी ही ॥५॥

दोहा-- धन गहि राखहु विपति हित, धन ते वनिता धीर ।

तजि वनिता धनकूँ तुरत, सबते राख शरीर ॥६॥

आपत्तिकाल के लिए धनको ओर धन से भी बढकर स्त्री की रक्षा करनी चाहिये । किन्तु स्त्री ओर धन से भी बढकर अपनी रक्षा करनी उचित है ॥६॥

दोहा-- आपद हित धन राखिये, धनहिं आपदा कौन ।

संचितहूँ नशि जात है, जो लक्ष्मी करु गौन ॥७॥

आपत्ति से बचने के लिए धन कि रक्षा करनी चाहिये । इस पर यह प्रश्न होता है कि श्रीमान् के पास आपत्ति आयेगी ही क्यों ? उत्तर देते हैं कि कोई ऐसा समय भी आ जाता है, जब लक्ष्मी महारानी भी चल देती हैं । फिर प्रश्न होता है कि लक्ष्मी के चले जानेपर जो कोछ बचा बचाया धन है, वह भी चला जायेगा ही ॥७॥

दोहा-- जहाँ न आदर जीविका, नहिं प्रिय बन्धु निवास ।

नहिं विद्या जिस देश में, करहु न दिन इक वास ॥८॥

जिस देश में न सम्मान हो, न रोजी हो, न कोई भाईबन्धु हो और न विद्या का ही आगम हो, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये ॥८॥

दोहा-- धनिक वेदप्रिय भूप अरु, नदी वैद्य पुनि सोय ।

बसहु नाहिं इक दिवस तह, जहँ यह पञ्च न होय ॥९॥

धनी (महाजन) वेदपाठी ब्राह्मण, राजा, नदी और पाँचवें वैद्य, ये पाँच जहाँ एक दिन भी न वसो ॥९॥

दोहा-- दानदक्षता लाज भय, यात्रा लोक न जान ।

पाँच नहीं जहँ देखिये, तहाँ न बसहु सुजान ॥१०॥

जिसमें रोजी, भय, लज्जा, उदारता और त्यागशीलता, ये पाँच गुण विद्यमान नहीं, ऎसे मनुष्य से मित्रता नहीं करनी चाहिये ॥१०॥

दोहा-- काज भृत्य कूँ जानिये, बन्धु परम दुख होय ।

मित्र परखियतु विपति में, विभव विनाशित जोय ॥११॥

सेवा कार्य उपस्थित होने पर सेवकों की, आपत्तिकाल में मित्र की, दुःख में बान्धवों की और धन के नष्ट हो जाने पर स्त्री की परीक्षा की जाती है ॥११॥

दोहा-- दुख आतुर दुरभिक्ष में, अरि जय कलह अभङ्ग ।

भूपति भवन मसान में, बन्धु सोइ रहे सङ्ग ॥१२॥

जो बिमारी में दुख में, दुर्भिक्ष में शत्रु द्वारा किसी प्रकार का सङ्कट उपस्थित होनेपर, राजद्वार में और श्मशान पर जो ठीक समय पर पहुँचता है, वही बांधव कहलाने का अधिकारी है ॥१२॥

दोहा-- ध्रुव कूँ तजि अध्र अ गहै, चितमें अति सुख चाहि ।

ध्रुव तिनके नाशत तुरत, अध्र व नष्ट ह्वै जाहि ॥१३॥

जो मनुष्य निश्चित वस्तु छोडकर अनिश्चित की ओर दौडता है तो उसकी निश्चित वस्तु भी नष्ट हो जाती है और अनिश्चित तो मानो पहले ही से नष्ट थी ॥१३॥

दोहा-- कुल जातीय विरूप दोउ, चातुर वर करि चाह ।

रूपवती तउ नीच तजि, समकुल करिय विवाह ॥१४॥

समझदार मनुष्य का कर्तव्य है कि वह कुरूपा भी कुलवती कन्या के साथ विवाह कर ले, पर नीच सुरूपवती के साथ न करे । क्योंकि विवाह अपने समान कुल में ही अच्छा होता है ॥१४॥

दोहा-- सरिता श्रृङ्गी शस्त्र अरु, जीव जितने नखवन्त ।

तियको नृपकुलको तथा , करहिं विश्वास न सन्त ॥१५॥

नदियों का, शस्त्रधारियोंका, बडे-बडे नखवाले जन्तुओं का, सींगवालों का, स्त्रियों का और राजकुल के लोगों का विश्वास नहीं करना चाहिये ॥१५॥

दोहा-- गहहु सुधा विषते कनक, मलते बहुकरि यत्न ।

नीचहु ते विद्या विमल, दुष्कुलते तियरत्न ॥१६॥

विष से भी अमृत, अपवित्र स्थान से भी कञ्चन, नीच मनुष्य से भी उत्तम विद्या और दुष्टकुल से भी स्त्रीरत्न को ले लेना चाहिए ॥१६॥

दोहा-- तिय अहार देखिय द्विगुण, लाज चतुरगुन जान ।

षटगुन तेहि व्यवसाय तिय, काम अष्टगुन मान ॥१७॥

स्त्रियों में पुरुषकी अपेक्षा दूना आहार चौगुनी लज्जा छगुना साहस और अठगुना काम का वेग रहता है ॥१७॥

इति चाणक्यनीतिदर्पणो प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अध्याय २

दोहा-- अनृत साहस मूढता, कपटरु कृतघन आइ ।

निरदयतारु मलीनता, तियमें सहज रजाइ ॥१॥

झूठ बोलना, एकाएक कोई काम कर बैठना, नखरे करना, मूर्खता करना, ज्यादा लालच रखना, अपवित्र रहना और निर्दयता का बर्ताव करना ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं ॥१॥

दोहा-- सुन्दर भोजन शक्ति रति, शक्ति सदा वर नारि ।

विभव दान की शक्ति यह, बड तपफल सुखकारि ॥२॥

भोजन योग्यपदार्थों का उपलब्ध होते रहना, भोजन की शक्ति विद्यमान रहना (यानी स्वास्थ्य में किसी तरह की खराबी न रहना) रतिशक्ति बनी रहना, सुन्दरी स्त्री का मिलना, इच्छानुकूल धन रहना और साथ ही दानशक्ति का भी रहना, ये बातें होना साधारण तपस्या का फल नहीं है (जो अखण्ड तपस्या किये रहता है, उसको ये चीजें उपलब्ध होती हैं) ॥२॥

दोहा-- सुत आज्ञाकारी जिनाहिं, अनुगामिनि तिय जान ।

विभव अलप सन्तोष तेंहि, सुर पुर इहाँ पिछान ॥३॥

जिसका पुत्र अपने वश में, स्त्री आज्ञाकारिणी हो और जो प्राप्त धन से सन्तुष्ट है, उसके लिये यहाँ स्वर्ग है ॥३॥

दोहा-- ते सुत जे पितु भक्तिरत, हितकारक पितु होय ।

जेहि विश्वास सो मित्रवर, सुखकारक तिय होय ॥४॥

वे ही पुत्र, पुत्र हैं जो पिता के भक्त हैं । वही पिता, पिता है, हो अपनी सन्तानका उचित रीति से पालन पोषण करता है । वही मित्र, मित्र है कि जिसपर अपना विश्वास है और वही स्त्री स्त्री है कि जहाँ हृदय आनन्दित होता है ॥४॥

दोहा-- ओट कार्य की हानि करि, सम्मुख करैं बखान ।

अस मित्रन कहँ दूर तज, विष घट पयमुख जान ॥५॥

जो पीठ पीछे अपना काम बिगाशता हो और मुँहपर मीठीमीठी बातें करता हो, ऎसे मित्र को त्याग देना चाहिए । वह वैसे ही है जैसे किसी घडे में गले तक विष भरा हो, किन्तु मुँह पर थोडा सा दूध डाल दिया गया हो ॥५॥

दोहा-- नहिं विश्वास कुमित्र कर, किजीय मित्तहु कौन ।

कहहि मित्त कहुँ कोपकरि, गोपहु सब दुख मौन ॥६॥

(अपनी किसी गुप्त बात के विषय में) कुमित्र पर तो कोसी तरह विश्वास न करे और मित्र पर भी न करे । क्योंकि हो सकता है कि वह मित्र कभी बिगड जाय और सारे गुप्त भेद खोल दे ॥६॥

दोहा-- मनतै चिंतित काज जो, बैनन ते कहियेन ।

मन्त्र गूढ राखिय कहिय, दोष काज सुखदैन ॥७॥

जो बात मनमें सोचे, वह वचन से प्रकाशित न करे । उस गुप्त बात की मन्त्रणा द्वारा रक्षा करे और गुप्त ढंग से ही उसे काम में भी लावे ॥७॥

दोहा-- मूरखता अरु तरुणता, हैं दोऊ दुखदाय ।

पर घर बसितो कष्ट अति, नीति कहत अस गाय ॥८॥

पहला कष्ट तो मूर्ख होना है, दूसरा कष्ट है जवानी और सब कष्टों से बढकर कष्ट है, पराये घर में रहना ॥८॥

दोहा-- प्रतिगिरि नहिं मानिक गनिय, मौक्ति न प्रतिगज माहिं ।

सब ठौर नहिं साधु जन, बन बन चन्दन नाहिं ॥९॥

हर एक पहाड पर माणिक नहीं होता, सब हाथियों के मस्तक में सुक्ता नहीं होता, सज्जन सर्वत्र नहीं होता, सज्जन सर्वत्र नहीं होते और चन्दन सब जंगलो में नहीं होता ॥९॥

दोहा-- चातुरता सुतकू सुपितु, सिखवत बारहिं बार ।

नीतिवन्त बुधवन्त को, पूजत सब संसार ॥१०॥

समझदार मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने पुत्रों को विविध प्रकार के शील की शिक्षा दे । क्योंकि नीति को जानने वाले और शीलवान् पुत्र अपने कुल में पूजित होते हैं ॥१०॥

दोहा-- तात मात अरि तुल्यते, सुत न पढावत नीच ।

सभा मध्य शोभत न सो, जिमि बक हंसन बीच ॥११॥

जो माता अपने बेटे को पढाती नहीं, वह शत्रु है । उसी तरह पुत्र को न पढानेवाला पिता पुत्र का बैरी है । क्योंकि (इस तरह माता-पिता की ना समझी से वह पुत्र) सभा में उसी तरह शोभित नहीं होता, जैसे हंसो के बीच में बगुला ॥११॥

दोहा-- सुत लालन में दोष बहु, गुण ताडन ही माहिं ।

तेहि ते सुतअरु शिष्यकूँ, ताडिय लालिय नाहिं ॥१२॥

बच्चों का दुलार करने में दोष है और ताडन करने में भुत से गुण हैं । इसलिए पुत्र और शिष्य को ताडना अधिक दे, दुलार न करे ॥१२॥

दोहा-- सीखत श्लोखहु अरध कै, पावहु अक्षर कोय ।

वृथा गमावत दिवस ना, शुभ चाहत निज सोय ॥१३॥

किसी एक श्लोक या उसके आधे आधे भाग या आधे के भी आधे भाग का मनन करे । क्योंकि भारतीय महर्षियों का कहना यही है कि जैसे भी हो दान, अध्ययन (स्वाध्याय) आदि सब कर्म करके बीतते हुए दिनों को सार्थक करो, इन्हें यों ही न गुजर न जाने दो ॥१३॥

दोहा-- युध्द शैष प्यारी विरह, दरिद बन्धु अपमान ।

दुष्टराज खलकी सभा, दाहत बिनहिं कृशान ॥१४॥

स्त्री का वियोग, अपने जनों द्वारा अपमान, युध्द में बचा हुआ शत्रु, दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रता और स्वार्थियों की सभा, ये बातें अग्नि के बिना ही शरीर को जला डालती हैं ॥१४॥

दोहा-- तरुवर सरिता तीरपर, निपट निरंकुश नारि ।

नरपति हीन सलाह नित, बिनसत लगे न बारि ॥१५॥

नदी के तट पर लगे वृक्ष, पराये घर रनेवाली स्त्री, बिना मंत्री का राजा, ये शीघ्र ही नष्ट हो जातें हैं ॥१५॥

दोहा-- विद्या बल है विप्रको, राजा को बल सैन ।

धन वैश्यन बल शुद्रको, सेवाही बलदैन ॥१६॥

ब्राह्मणों का बल विद्या है, राजाओं का बल उनकी सेना है, वैश्यों का बल धन है और शूद्रों का बलद्विजाति की सेवा है ॥१६॥

दोहा-- वेश्या निर्धन पुरुष को, प्रजा पराजित राय ।

तजहिं पखेरूनिफल तरु, खाय अतिथि चल जाय ॥१७॥

धनविहीन पुरुष को वेश्या, शक्तिहीन राजा को प्रजा, जिसका फल झड गया है, ऎसे वृक्ष को पक्षी त्याग देते हैं और भोजन कर लेने के बाद अतिथि उस घर को छोड देता है ॥१७॥

दोहा-- लेइ दक्षिणां यजमान सो, तजि दे ब्राह्मण वर्ग ।

पढि शिष्यन गुरु को तजहिं, हरिन दग्ध बन पर्व ॥१८॥

ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमान को छोड देते हैं । विद्या प्राप्त कर लेने के बाद विद्यार्थी गुरु को छोड देता है और जले हुए जंगल को बनैले जीव त्याग देते हैं ॥१८॥

दोहा-- पाप दृष्टि दुर्जन दुराचारी दुर्बस जोय ।

जेहि नर सों मैत्री करत, अवशि नष्ट सो होय ॥१९॥

दुराचारी, व्यभिचारी, दूषित स्थान के निवासी, इन तीन प्रकार के मनुष्यों से जो मनुष्य मित्रता करता है, उसका बहुत जल्दी विनाश हो जाता है ॥१९॥

दोहा-- सम सों सोहत मित्रता, नृप सेवा सुसोहात ।

बनियाई व्यवहार में, सुन्दरि भवन सुहात ॥२०॥

बराबरवाले के साथ मित्रता भली मालूम होती है । राजा की सेवा अच्छी लगती है । व्यवहार में बनियापन भला लगता है और घर में अन्दर स्त्री भली मालूम होती है ॥२०॥

इति चाणक्य नीति-दर्पण द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

दोहा-- केहि कुल दूषण नहीं, व्याधि न काहि सताय ।

कष्ट न भोग्यो कौन जन, सुखी सदा कोउ नाय ॥१॥

जिसके कुल में दोष नहीं है ? कितने ऎसे प्राणी हैं जो किसी प्रकार के रोगी नहीं है ? कौन ऎसा जीव है कि हमेशा जिसे सुख ही सुख मिल रहा है ? ॥१॥

दोहा-- महत कुलहिं आचार भल, भाषन देश बताय ।

आदर प्राप्ति जनावहि, भोजन देहु मुटाय ॥२॥

मनुष्य का आचरण उसके कुल को बता देता है, उसका भाषण देश का पता दे देता है, उसका आदर भाव प्रेम का परिचय दे देता है और शरीर भोजनका हाल कह देताहै ॥२॥

दोहा-- कन्या ब्याहिय उच्च कुल, पुत्रहिं शास्त्र पढाय ।

शत्रुहिं दुख दीजै सदा, मित्रहिं धर्म सिखाय ॥३॥

मनुष्य का कर्तव्य है कि अपनी कन्या किसी अच्छे खानदान वाले को दे । पुत्र को विद्याभ्यास में लगा दे । शत्रु को विपत्ति में फँसा दे और मित्र को धर्मकार्य में लगा दे ॥३॥

दोहा-- खलहु सर्प इन सुहुन में, भलो सर्प खल नाहिं ।

सर्प दशत है काल में, खलजन पद पद माहिं ॥४॥

दुर्जन और साँप इन दोनों में, दुर्जन की अपेक्षा साँप कहीं अच्छा है । क्योंकि साँप समय पाकर एक ही बार काटता है और दुर्जन पद पद पर काटता रहता है ॥४॥

दोहा-- भूप कुलीनन्ह को करै, संग्रह याही हेत ।

आदि मध्य और अन्त में, नृपहि न ते तजि देत ॥५॥

राजा लोग कुलीन पुरुषों को अपने पास इसलिए रखते हैं कि जो आदि मध्य और अन्त किसी समय भी राजा को नहीं छोडता ॥५॥

दोहा-- मर्यादा सागर तजे, प्रलय होन के काल ।

उत साधू छोड नहीं, सदा आपनी चाल ॥६॥

समुद्र तो प्रलयकाल में अपनी मर्यादा भी भंग कर देते हैं (उमड कर सारे संसार को डुबो देते हैं) । पर सज्जन लोग प्रलयकाल में भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते हैं ॥६॥

दोहा-- मूरख को तजि दीजिये, प्रगट द्विपद पशु जान ।

वचन शल्यते वेधहीं, अड्गहिं कांट समान ॥७॥

मूर्ख को दो पैरवाला पशु समझ कर उसे त्याग ही देना चाहिए । क्योंकि यह समय-समय पर अपने वाक्यरूपी शूल से उसी तरह बेधता है जैसे न दिखायी पडता हुआ कांटा चुभ जाता है ॥७॥

दोहा-- संयुत जीवन रूपते, कहिये बडे कुलीन ।

विद्या बिन शोभत नहीं पुहुप गंध ते हीन ॥८॥

रूप और यौवन से युक्त, विशाल कुल में उत्पन्न होता हुआ भी विद्याविहीन मनुष्य उसी प्रकार अच्छा नहीं लगता, जैसे सुगंधि रहित पलास फूल ॥८॥

दोहा-- रूप कोकिला रव तियन, पतिव्रत रूप अनूप ।

विद्यारूप कुरूप को, क्षमा तपस्वी रूप ॥९॥

कोयल का सौन्दर्य है उसकी बोली, स्त्री का सौन्दर्य है उसका पातिव्रत । कुरूप का सौन्दर्य है उसकी विद्या और तपस्वियों का सौन्दर्य है उनकी क्षमाशक्ति ॥९॥

दोहा-- कुलहित त्यागिय एककूँ, गृहहु छाडि कुल ग्राम ।

जनपद हित ग्रामहिं तजिय, तनहित अवनि तमाम ॥१०॥

जहाँ एक के त्यागने से कोल की रक्षा हो सकती हो, वहाँ उस एक को त्याग दे । यदि कुल के त्यागने से गाँव की रक्षा होती हो तो उस कुल को त्याग दे । यदि उस गाँव के त्यागने से जिले की रक्षा हो तो गाँव को त्याग दे और यदि पृथ्वी के त्यागने से आत्मरक्षा सम्भव हो तो उस पृथ्वी को ही त्याग दे ॥१०॥

दोहा-- नहिं दारिद उद्योग पर, जपते पातक नाहिं ।

कलह रहे ना मौन में, नहिं भय जागत माहिं ॥११॥

उद्योग करने पर दरिद्रता नहीं रह सकती । ईश्वर का बार बार स्मरण करते रहने पर पाप नहीं हो सकता । चुप रहने पर लडाई झगडा नहीं हो सकता और जागते हुए मनुष्य के पास भय नहीं टिक सकता ॥११॥

दोहा-- अति छबि ते सिय हरण भौ, नशि रावण अति गर्व ।

अतिहि दान ते बलि बँधे, अति तजिये थल सर्व ॥१२॥

अतिशय रूपवती होने के कारण सीता हरी गई । अतिशय गर्व से रावण का नाश हुआ । अतिशय दानी होने के कारण वलि को बँधना पडा । इसलिये लोगों को चाहिये कि किसी बात में 'अति' न करें ॥१२॥

दोहा-- उद्योगिन कुछ दूर नहिं, बलिहि न भार विशेष ।

प्रियवादिन अप्रिय नहिं, बुधहि न कठिन विदेश ॥१३॥

समर्थ्यवाले पुरुष को कोई वस्तु भारी नहीं हो सकती । व्यवसायी मनुष्य के लिए कोई प्रदेश दूर नहीं कहा जा सकता और प्रियवादी मनुष्य किसी का पराया नहीं कहा जा सकता ॥१३॥

दोहा-- एक सुगन्धित वृक्ष से, सब बन होत सुवास ।

जैसे कुल शोभित अहै, रहि सुपुत्र गुण रास ॥१४॥

(वन) के एक ही फूले हुए और सुगन्धित वृक्ष ने सारे वन को उसी तरह सुगन्धित कर दिया जैसे कोई सपूत अपने कुल की मर्यादा को उज्ज्वल कर देता है ॥१४॥

दोहा-- सूख जरत इक तरुहुते, जस लागत बन दाढ ।

कुलका दाहक होत है, तस कुपूत की बाढ ॥१५॥

उसी तरह वनके एक ही सूखे और अग्नि से जतते हुए वृक्ष के कारण सारा वन जल कर खाक हो जाता है । जैसे किसी कुपूत के कारण खानदान का खानदान बदनाम हो जाता है ॥१५।

सोरठा-- एकहु सुत जो होय, विद्यायुत अरु साधु चित ।

आनन्दित कुल सोय, यथा चन्द्रमा से निशा ॥१६॥

एक ही सज्जन और विद्वान पुत्र से सारा कुल आह् लादित हो उठता है, जैसे चन्द्रमा के प्रकाश से रात्रि जगमगा उठती है ।

दोहा-- करनहार सन्ताप सुत, जनमें कहा अनेक ।

देहि कुलहिं विश्राम जो, श्रेष्ठ होय वरु एक ॥१७॥

शोक और सन्ताप देनेवाले बहुत से पुत्रों के होने से क्या लाभ ? अपने कुल के अनुसार चलनेवाला एक ही पुत्र बहुत है कि जहाँ सारा कुल विश्राम कर सके ॥१७॥

दोहा-- पाँच वर्ष लौं लीलिए, दसलौं ताडन देइ ।

सुतहीं सोलह वर्ष में, मित्र सरिस गनि देइ ॥१८॥

पाँच वर्ष तक बच्चे का दुलार करे । फिर दस वर्ष तक उसे ताडना दे, किन्तु सोलह वर्ष के हो जाने पर पुत्र को मित्र के समान समझे ॥१८॥

दोहा-- काल उपद्रव संग सठ, अन्य राज्य भय होय ।

तेहि थल ते जो भागिहै, जीवत बचिहै सोय ॥१९॥

दंगा बगैरह खडा हो जाने पर, किसी दूसरे राजा के आक्रमण करने पर, भयानक अकाल पडने पर और किसी दुष्ट का साथ हो जाने पर , जो मनुष्य भाग निकलता है, वही जीवित रहता है ॥१९॥

दोहा-- धरमादिक चहूँ बरन में, जो हिय एक न धार ।

जगत जननि तेहि नरन के, मरिये होत अबार ॥२०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों में से एक पदार्थ भी जिसको सिध्द नहीं हो सका, ऎसे मनुष्य का मर्त्यलोक में बार-बार जन्म केवल मरने के लिए होता है । और किसी काम के लिए नहीं ॥२०॥

दोहा-- जहाँ अन्न संचित रहे, मूर्ख न पूजा पाव ।

दंपति में जहँ कलह नहिं, संपत्ति आपुइ आव ॥२१॥

जिस देश में मूर्खों की पूजा नहीं होती, जहाँ भरपूर अन्न का संचय रहता है और जहाँ स्त्री पुरुष में कलह नहीं होता, वहाँ बस यही समझ लो कि लक्ष्मी स्वयं आकर विराज रही हैं ॥२१॥

इति चाणक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

सोरठा-- आयुर्बल औ कर्म, धन, विद्या अरु मरण ये ।

नीति कहत अस मर्म, गर्भहि में लिखि जात ये ॥१॥

आयु, कर्म, धन, विद्या, और मृत्यु ये पाँच बातें तभी लिख दी जाती हैं, जब कि मनुष्य गर्भ में ही रहता है ॥१॥

दोहा-- बाँधव जनमा मित्र ये, रहत साधु प्रतिकूल ।

ताहि धर्म कुल सुकृत लहु, वो उनके प्रतिकूल ॥३॥

संसार के अधिकांश पुत्र, मित्र और बान्धव सज्जनों से पराङ्मुख ही रहते हैं, लेकिन जो पराङ्मुख न रह कर सज्जनों के साथ रहते हैं, उन्हीं के धर्म से वह कुल पुनीत हो जाता है ॥२॥

दोहा-- मच्छी पच्छिनि कच्छपी, दरस, परस करि ध्यान ।

शिशु पालै नित तैसे ही, सज्जन संग प्रमान ॥३॥

जैसे मछली दर्शन से, कछुई ध्यान से और पक्षिणी स्पर्श से अपने बच्चे का पालन करती है, उसी तरह सज्जनों की संगति मनुष्य का पालन करती है ॥३॥

दोहा-- जौलों देह समर्थ है, जबलौं मरिबो दूरि ।

तौलों आतम हित करै, प्राण अन्त सब धूरि ॥४॥

जब तक कि शरीर स्वस्थ है और जब तक मृत्यु दूर है । इसी बीच में आत्मा का कल्याण कर लो । अन्त समय के उपस्थित हो जाने पर कोई क्या करेगा ? ॥४॥

दोहा-- बिन औसरहू देत फल, कामधेनु सम नित्त ।

माता सों परदेश में, विद्या संचित बित्त ॥५॥

विद्या में कामधेनु के समान गुण विद्यमान है । यह असमय में भी फल देती है । परदेश में तो यह माता की तरह पालन करती है । इसलिए कहा जाता है विद्या गुप्त धन है ॥५॥

दोहा-- सौ निर्गुनियन से अधिक, एक पुत्र सुविचार ।

एक चन्द्र तम कि हरे, तारा नहीं हजार ॥६॥

एक गुणवान पुत्र सैकडों गुणहीन पुत्रों से अच्छा है ।अकेला चन्द्रमा अन्धकार के दुर कर देता है, पर हजारों तारे मिलकर उसे नहीं दूर कर पाते ॥६॥

दोहा-- मूर्ख चिरयन से भलो, जन्मत हो मरि जाय ।

मरे अल्प दुख होइहैं, जिये सदा दुखदाय ॥७॥

मूर्ख पुत्र का चिरजीवी होकर जीना अच्छा नहीं है । बल्कि उससे वह पुत्र अच्छा है, जो पैदा होते ही मर जाय । क्योंकि मरा पुत्र थोडे दुःख का कारण होता है, पर जीवित मूर्ख पुत्र जन्मभर जलाता ही रहता है ॥७॥

दोहा-- घर कुगाँव सुत मूढ तिय, कुल नीचनि सेवकाइ ।

मूर्ख पुत्र विधवा सुता, तन बिन अग्नि जराइ ॥८॥

खराब गाँव का निवास, नीच कुलवाले प्रभु की सेवा, खराब भोजन, कर्कशा स्त्री, मूर्ख पुत्र और विधवा पुत्री ये छः बिना आग के ही प्राणी के शरीर को भून डालते हैं ॥८॥

दोहा-- कहा होय तेहि धेनु जो, दूध न गाभिन होय ।

कौन अर्थ वहि सुत भये, पण्डित भक्त न होय ॥९॥

ऎसी गाय से क्या लाभ जो न दूध देती है और न गाभिन हो । उसी प्रकार उस पुत्र से क्या लाभ, जो न विद्वान हो और न भक्तिमान् ही होवे ॥९॥

सोरठा-- यह तीनों विश्राम, मोह तपन जग ताप में ।

हरे घोर भव घाम, पुत्र नारि सत्संग पुनि ॥१०॥

सांसारिक ताप से जलते हुए लोगों के तीन ही विश्राम स्थल हैं । पुत्र, स्त्री और सज्जनों का संग ॥१०॥

दोहा-- भुपति औ पण्डित बचन, औ कन्या को दान ।

एकै एकै बार ये, तीनों होत समान ॥११॥

राजा लोग केवल एक बात कहतें हैं, उसी प्रकार पण्डित लोग भी केवल एक ही बार बोलते हैं, (आर्यधर्मावलम्बियोंके यहाँ) केवल एक बार कन्या दी जाती हैं, ये तीन बातें केवल एक ही बार होती हैं ॥११॥

दोहा-- तप एकहि द्वैसे पठन, गान तीन मग चारि ।

कृषी पाँच रन बहुत मिलु, अस कह शास्त्र विचारि ॥१२॥

अकेले में तपस्या, दो आदमियों से पठन, तीन गायन, चार आदमियों से रास्ता, पाँच आदमियों के संघ से खेती का काम और ज्यादा मनुष्यों को समुदाय द्वारा युध्द सम्पन्न होता है ॥१२॥

दोहा-- सत्य मधुर भाखे बचन, और चतुरशुचि होय ।

पति प्यारी और पतिव्रता, त्रिया जानिये सोय ॥१३॥

वही भार्या (स्त्री) भार्या है, जो पवित्र, काम-काज करने में निपुण, पतिव्रता, पतिपरायण और सच्ची बात करने वाली हो ॥१३॥

दोहा-- है अपुत्र का सून घर, बान्धव बिन दिशि शून ।

मूरख का हिय सून है, दारिद का सब सून ॥१४॥

जिसके पुत्र नहीं जओ, उसका घर सूना है । जिसका कोई भाईबन्धु नहीं होता, उसके लिए दिशाएँ शून्य रहती हैं । मूर्ख मनुष्य का हृदय शून्य रहता है और दरिद्र मनुष्य के लिए सारा संसार सूना रहता है ॥१४॥

दोहा-- भोजन विष है बिन पचे, शास्त्र बिना अभ्यास ।

सभा गरल सम रंकहिं, बूढहिं तरुनी पास ॥१५॥

अनभ्यस्त शास्त्र विष के समान रहता है, अजीर्ण अवस्था में फिर से भोजन करना विष है । दरिद्र के लिए सभा विष है और बूढे पुरुष के लिए युवती स्त्री विष है ॥१५॥

दोहा-- दया रहित धर्महिं तजै, औ गुरु विद्याहीन ।

क्रोधमुखी प्रिय प्रीति बिनु, बान्धव तजै प्रवीन ॥१६॥

जिस धर्म में दया का उपदेश न हो, वह धर्म त्याग दे । जिस गुरु में विद्या न हो, उसे त्याग दे । हमेशा नाराज रहनेवाली स्त्री त्याग दे और स्नेहविहीन भाईबन्धुओं को त्याग देना चाहिये ॥१६॥

दोहा-- पन्थ बुराई नरन की, हयन पंथ इक धाम ।

जरा अमैथुन तियन कहँ, और वस्त्रन को धाम ॥१७॥

मनुष्यों के लिए रास्ता चलना बुढापा है । घोडे के लिए बन्धन बुढापा है । स्त्रियों के लिए मैथुन का अभाव बुढापा है । वस्त्रों के लिए घाम बुढापा है ॥१७॥

दोहा-- हौं केहिको का शक्ति मम, कौन काल अरु देश ।

लाभ खर्च को मित्र को, चिन्ता करे हमेश ॥१८॥

यह कैसा समय है, मेरे कौन २ मित्र हैं, यह कैसा देश है, इस समय हमारी क्या आमदनी और क्या खर्च है, मैं किसेके अधीन हूँ और मुझमें कितनी शक्ति है इन बातों को बार-बार सोचते रहना चाहिये ॥१८॥

दोहा-- ब्राह्मण, क्षतिय, वैश्य को, अग्नि देवता और ।

मुनिजन हिय मूरति अबुध, समदर्शिन सब ठौर ॥१९॥

द्विजातियों के लिए अग्नि देवता हैं, मुनियों का हृदय ही देवता है, साधारण बुध्दिवालों के लिए प्रतिमायें ही देवता है और समदर्शी के लिए सारा संसार देवमय है ॥१९॥

इति चाणक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

दोहा-- अभ्यागत सबको गुरु, नारि गुरु पति जान ।

द्विजन अग्नि गुरु चारिहूँ, वरन विप्र गुरु मान ॥१॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों का गुरु अग्नि है । उपर्युक्त चारो वर्णों का गुरु ब्राह्मण है, स्त्री का गुरु उसका पति है और संसार मात्र का गुरु अतिथि है ॥१॥

दोहा-- आगिताप घसि काटि पिटि, सुवरन लख विधि चारि ।

त्यागशील गुण कर्म तिमि, चारिहि पुरुष विचारि ॥२॥

जैसे रगडने से, काटने से, तपाने से और पीटने से, इन चार उपायों से सुवर्ण की परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार त्याग, शील, गुण और कर्म, इन चार बातों से मनुष्य की परीक्षा होती है ॥२॥

दोहा-- जौलौं भय आवै नहीं, तौलौं डरे विचार ।

आये शंका छाडि के, चाहिय कीन्ह प्रहार ॥३॥

भय से तभी तक डरो, जब तक कि वह तुम्हारे पास तक न आ जाय । और जन आ ही जाय तो डरो नहीं बल्कि उसे निर्भिक भाव से मार भगाने की कोशिश करो ॥३॥

दोहा-- एकहि गर्भ नक्षत्र में, जायमान यदि होय ।

नाहिं शील सम होत है, बेर काँट सम होय ॥४॥

एक पेट से और एक ही नक्षत्र में उत्पन्न होने से किसी का शील एक सा नहीं हो जाता । उदाहरण स्वरूप बेर के काँटों को देखो ॥४॥

दोहा-- नहि निस्पृह अधिकार गहु, भूषण नहिं निहकाम ।

नहिं अचतुर प्रिय बोल नहिं, बंचक साफ कलाम ॥५॥

निस्पृह मनुष्य कभी अधिकारी नहीं हो सकता । वासना से शुन्य मनुष्य श्रृंगार का प्रेमी नहीं हो सकता । जड मनुष्य कभी मीठी वाणी नहीं बोल सकता और साफ-साफ बात करने वाला धोखेबाज नहीं होता ॥५॥

दोहा-- मूरख द्वेषी पण्डितहिं, धनहीनहिं धनवान् ।

परकीया स्वकियाहु का, विधवा सुभगा जान ॥६॥

मूर्खों के पण्डित शत्रु होते हैं । दरिद्रों के शत्रु धनी होते हैं । कुलवती स्त्रीयों के शत्रु वेश्यायें होती हैं और सुन्दर मनुष्यों के शत्रु कुरूप होते है ॥६॥

दोहा-- आलस ते विद्‌या नशै, धन औरन के हाथ ।

अल्प बीज से खेत अरु, दल दलपति बिनु साथ ॥७॥

आलस्य से विद्‌या, पराये हाथ में गया धन, बीज में कमी करने से खेती और सेनापति विहीन सेना नष्ट हो जाती है ॥६॥

दोहा-- कुल शीलहिं ते धारिये, विद्‌या करि अभ्यास ।

गुणते जानहिं श्रेष्ठ कहँ, नयनहिं कोप निवास ॥८॥

अभ्यास से विद्‌या की और शील से कुल की रक्षा होती है । गुण से मनुष्य पहिचाना जाता है और आँखें देखने से क्रोध का पता लग जाता है ॥८॥

दोहा-- विद्‌या रक्षित योग ते, मृदुता से भूपाल ।

रक्षित गेह सुतीय ते, धन ते धर्म विशाल ॥९॥

धन से धर्म की, योग से विद्‌या की, कोमलता से राजा की और अच्छी स्त्री से घर की रक्षा होती है ॥९॥

दोहा-- वेद शास्त्र आचार औ, शास्त्रहुँ और प्रकार ।

जो कहते लहते वृथा, लोग कलेश अपार ॥१०॥

वेद को, पाण्डित्य को, शास्त्र को, सदाचार को और अशान्त मनुष्य को जो लोग बदनाम करना चाहता हैं, वे व्यर्थ कष्ट करते हैं ॥१०॥

सोरठा-- दारिद नाशन दान, शील दुर्गतिहिं नाशियत ।

बुध्दि नाश अज्ञा, भय नाशत है भावना ॥११॥

दान दरिद्रता को नष्ट करता है, शील दुरवस्था को नष्ट कर देता है, बुध्दि अज्ञान को नष्ट कर देती है और विचार भय को नष्ट कर दिया करता है ॥११॥

सोरठा-- व्याधि न काम समान, रिपु नहिं दूजो मोह सम ।

अग्नि कोप से आन, नहीं ज्ञान से सुख परे ॥१२॥

काम के समान कोई रोग नहीं है, मोह (अज्ञान) के समान शत्रु नहीं है, क्रोध के समान और कोई अग्नि नहीं है और ज्ञान से बढकर और कोई सुख नहीं है ॥१२॥

सोरठा-- जन्म मृत्यु लहु एक, भोगै है इक शुभ अशुभ ।

नरक जात है एक, लहत एक ही मुक्तिपद ॥१३॥

संसार के मनुष्यों में से एक मनुष्य जन्म मरण के चक्कर में पडता है, एक अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है एक नरक में जा गिरता है और एक परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥१३॥

दोहा-- ब्रह्मज्ञानिहिं स्वर्गतृन, जिद इन्द्रिय तृणनार ।

शूरहिं तृण है जीवनी, निस्पृह कहँ संसार ॥१४॥

ब्रह्मज्ञानी के लिये स्वर्ग तिनके के समान है । बहादुर के लिए जीवन तृण के समान है जितेन्द्रिय को नारी और निस्पृह के लिए सारा संसार तृण के समान है ॥१४॥

दोहा-- विद्या मित्र विदेश में, घर तिय मीत सप्रीत ।

रोगिहि औषध अरु मरे, धर्म होत है मीत ॥१५॥

परदेश में विद्या मित्र है, घर में स्त्री मित्र है । रोगी को औषधि मित्र है और मरे हुए मनुष्य का धर्म मित्र है ॥१५॥

दोहा-- व्यर्थहिं वृष्टि समुद्र में, तृप्तहिं भोजन दान ।

धनिकहिं देनों व्यर्थ है, व्यर्थ दीप दीनमान ॥१६॥

समुद्र में वर्षा व्यर्थ है । तृप्त को भोजन व्यर्थ है । धनाढ्य को दान देना व्यर्थ और दिन के समय दीपक जलाना व्यर्थ है ॥१६॥

दोहा-- दूजो जल नहिं मेघ सम, बल नहिं आत्म समान ।

नहिं प्रकाश है नैन सम, प्रिय अनाज सम आन ॥१७॥

मेघ जल के समान उत्तम और कोई जल नहीं होता । आत्मबल के समान और कोई बल नहीं है । नेत्र के समान किसी में तेज नहीं है और अन्न के समान प्रिय कोई वस्तु नहीं है ॥१७॥

दोहा-- अधनी धन को चाहते, पशु चाहे वाचाल ।

नर चाहत है स्वर्ग को,सुरगण मुक्ति विशाल ॥१८॥

दरिद्र मनुष्य धन चाहते हैं । चौपाये वाणी चाहते हैं । मनुष्य स्वर्ग चाहतें हैं और देवता लोग मोक्ष चाहते हैं ॥१८॥

दोहा-- सत्यहि ते रवि तपत हैं, सत्यहिं पर भुवभार ।

चले पवनहू सत्य ते, सत्यहिं सब आधार ॥१९॥

सत्य के आधार पर पृथ्वी रुकी है । सत्य के सहारे सूर्य भगवान् संसार को गर्मी पहुँचाते हैं । सत्य के ही बल पर वायु वहता है । कहने का मतलब यह कि सब कुछ सत्य में ही है ॥१९॥

दोहा-- चल लक्ष्मी औ प्राणहू, और जीविका धाम ।

मह चलाचल जगत में, अचल धर्म अभिराम ॥२०॥

लक्ष्मी चंचल है, प्राण भी चंचल ही है, जीवन तथा घर द्वार भी चंचल है और कहाँ तक कहें यह सारा संसार चंचल है, बस धर्म केवल अचल और अटल है ॥२०॥

दोहा-- नर में नाई धूर्त है, मालिन नारि लखाहिं ।

चौपायन में स्यार है, वायस पक्षिन माहिं ॥२१॥

मनुष्यों में नाऊ, पक्षियों में कौआ, चौपायों में स्यार और स्त्रियों में मालिन, ये सब धूर्त होते हैं ॥२१॥

दोहा-- पितु आचारज जन्म पद, भय रक्षक जो कोय ।

विद्या दाता पाँच यह, मनुज पिता सम होय ॥२२॥

संसार में पिता पाँच प्रकार के होते हैं । ऎसे कि जन्म देने वाला, विद्यादाता, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करनेवाला, अन्न देनेवाला और भय से बचानेवाला ॥२२॥

दोहा-- रजतिय औ गुरु तिय, मित्रतियाहू जान ।

निजमाता और सासु ये, पाँचों मातु समान ॥२३॥

उसी तरह माता भी पाँच ही तरह की होती हैं । जैसे राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, मित्र की पत्नी, अपनी स्त्री की माता और अपनी खास माता ॥२३॥

इति चाणक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

दोहा-- सुनिकै जानै धर्म को, सुनि दुर्बुधि तजि देत ।

सुनिके पावत ज्ञानहू, सुनहुँ मोक्षपद लेत ॥१॥

मनुष्य किसी से सुनकर ही धर्म का तत्व समझता है । सुनकर ही दुर्बुध्दि को त्यागता है । सुनकर ही ज्ञान प्राप्त करता है और सुनकर ही मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है ॥१॥

दोहा-- वायस पक्षिन पशुन महँ, श्वान अहै चंडाल ।

मुनियन में जेहि पाप उर, सबमें निन्दक काल ॥२॥

पक्षियों में चाण्डाल है कौआ, पशुओं में चाण्डाल कुत्ता, मुनियों में चाण्डाल है पाप और सबसे बडा चाण्डाल है निन्दक ॥२॥

दोहा-- काँस होत शुचि भस्म ते, ताम्र खटाई धोइ ।

रजोधर्म ते नारि शुचि, नदी वेग ते होइ ॥३॥

राख से काँसे का बर्तन साफ होता है, खटाई से ताँबा साफ होता है, रजोधर्म से स्त्री शुध्द होती है और वेग से नदी शुध्द होती है ॥३॥

दोहा-- पूजे जाते भ्रमण से, द्विज योगी औ भूप ।

भ्रमण किये नारी नशै, ऍसी नीति अनूप ॥४॥

भ्रमण करनेवाला राजा पूजा जाता है, भ्रमण करता हुआ ब्राह्मण भी पूजा जाता है और भ्रमण करता हुआ योगी पूजा जाता है, किन्तु स्त्री भ्रमण करने से नष्ट हो जाती है ॥४॥

दोहा-- मित्र और है बन्धु तेहि, सोइ पुरुष गण जात ।

धन है जाके पास में, पण्डित सोइ कहात ॥५॥

जिसके पास धन है उसके बहुत से मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बहुत से बान्धव हैं । जिसके पास धन है वही संसार का श्रेष्ठ पुरुष है और जिसके पास धन है वही पण्डित है ॥५॥

दोहा-- तैसोई मति होत है, तैसोई व्यवसाय ।

होनहार जैसी रहै, तैसोइ मिलत सहाय ॥६॥

जैसा होनहार होता है, उसी तरह की बुध्दि हो जाती है, वैसा ही कार्य होता है और सहायक भी उसी तरह के मिल जाते हैं ॥६॥

दोहा-- काल पचावत जीव सब, करत प्रजन संहार ।

सबके सोयउ जागियतु, काल टरै नहिं टार ॥७॥

काल सब प्राणियों को हजम किए जाता है । काल प्रजा का संहार करता है, लोगों के सो जाने पर भी वह जागता रहता है । तात्पर्य यह कि काल को कोई टाल नहीं सकता ॥७॥

दोहा-- जन्म अन्ध देखै नहीं, काम अन्ध नहिं जान ।

तैसोई मद अन्ध है, अर्थी दोष न मान ॥८॥

न जन्म का अन्धा देखता है, न कामान्ध कुछ देख पाता है और न उन्मत्त पुरुष ही कोछ देख पाता है । उसी तरह स्वार्थी मनुष्य किसी बात में दोष नहीं देख पाता ॥८॥

दोहा-- जीव कर्म आपै करै, भोगत फलहू आप ।

आप भ्रमत संसार में, मुक्ति लहत है आप ॥९॥

जीव स्वयं कर्म करता है और स्वयं उसका शुभाशुभ फल भोगता है । वह स्वयं संसार में चक्कर खाता है और समय पाकर स्वयं छुटकारा भी पा जाता है ॥९॥

दोहा-- प्रजापाप नृप भोगियत, प्रेरित नृप को पाप ।

तिय पातक पति शिष्य को, गुरु भोगत है आप ॥१०॥

राज्य के पाप को राजा, राजाका पाप पुरोहित, स्त्रीका पाप पति और शिष्य के द्वारा किये हुए पाप को गुरु भोगता है ॥१०॥

दोहा-- ऋणकर्ता पितु शत्रु, पर-पुरुषगामिनी मत ।

रूपवती तिय शत्रु है, पुत्र अपंडित जात ॥११॥

ऋण करनेवाले पिता, व्याभिचारिणी माता, रूपवती स्त्री और मूर्ख पुत्र, ये मानवजातिके शत्रु हैं ॥११॥

दोहा-- धनसे लोभी वश करै, गर्विहिं जोरि स्वपान ।

मूरख के अनुसरि चले, बुध जन सत्य कहान ॥१२॥

अधिक सीधा-साधा होना भी अच्छा नहीं होता । जाकर वन में देखो--वहाँ सीधे वृक्ष काट लिये जाते हैं और टेढे खडे रह जाते हैं ॥१२॥

दोहा-- सजल सरोवर हंस बसि, सूखत उडि है सोउ ।

देखि सजल आवत बहुरि, हंस समान न होउ ॥१३॥

जहाँ जल रहता है वहाँ ही हंस बसते हैं । वैसे ही सूखे सरोवरको छोडते हैं और बार-बार आश्रय लर लेते हैं । सो मनुष्य को हंस के समान न होना चाहिये ॥१३॥

दोहा-- धन संग्रहको पेखिये, प्रगट दान प्रतिपाल ।

जो मोरी जल जानकूँ, तब नहिं फूटत ताल ॥१४॥

अर्जित धनका व्यय करना ही रक्षा है । जैसे नये जल आने पर तडाग के भीतर के जल को निकालना ही रक्षा है ॥१४॥

दोहा-- जिनके धन तेहि मीत बहु, जेहि धन बन्धु अनन्त ।

घन सोइ जगमें पुरुषवर, सोई जन जीवन्त ॥१५॥

जिनके धन रहता है उसके मित्र होते हैं, जिसके पास अर्थ रहता है उसीके बंधू होते हैं । जिसके धन रहता है वही पुरुष गिना जाता है, जिसके अर्थ है वही जीत है ॥१५॥

दोहा-- स्वर्गवासि जन के सदा, चार चिह्न लखि येहि ।

देव विप्र पूजा मधुर, वाक्य दान करि देहि ॥१६॥

संसार में आने पर स्वर्ग स्थानियों के शरीर में चार चिह्म रहते हैं, दान का स्वभाव, मीठा वचन, देवता की पूजा, ब्राह्मण को तृप्त करना अर्थात् जिन लोगों में दान आदि लक्षण रहे उनको जानना चाहिये कि वे अपने पुण्य के प्रभाव से स्वर्गवासी मृत्यु लोक में अवतार लिये हैं ॥१६॥

दोहा-- अतिहि कोप कटु वचनहूँ, दारिद नीच मिलान ।

स्वजन वैर अकुलिन टहल, यह षट नर्क निशान ॥१७॥

अत्यन्त क्रोध, कटुवचन, दरिद्रता, अपने जनों में बैर, नीचका संग, कुलहीनकी सेवा, ये चिह्म नरकवासियोंकी देहों में रहते हैं ॥१७॥

दोहा-- सिंह भवन यदि जाय कोउ, गजमुक्ता तहँ पाय ।

वत्सपूँछ खर चर्म टुक, स्यार माँद हो जाय ॥१८॥

यदि कोई सिंह की गुफा में जा पडे तो उसको हाथी के कपोलका मोती मिलता है, और सियार के स्थान में जाने पर बछावे की पूँछ और गदहे के चामडे का टुकडा मिलता है ॥१८॥

दोहा-- श्वान पूँछ सम जीवनी, विद्या बिनु है व्यर्थ ।

दशं निवारण तन ढँकन, नहिं एको सामर्थ ॥१९॥

कुत्ते की पूँछ के समान विद्या बिना जीना व्यर्थ है । कुत्ते की पूँछ गोप्य इन्द्रिय को ढाँक नहीं सकती और न मच्छड आदि जीवोंम को उडा सकती है ॥१९॥

दोहा-- वचन्शुध्दि मनशुध्दि और, इन्द्रिय संयम शुध्दि ।

भूतदया और स्वच्छता, पर अर्थिन यह बुध्दि ॥२०॥

वच की शुध्दि, मति की शुध्दि, इंद्रियों का संयम, जीवों पर दया और पवित्रता--ये परमार्थितों की शुध्दि है ॥२०॥

दोहा-- बास सुमन, तिल तेल, अग्नि काठ पय घीव ।

उखहिं गुड तिमि देह में तेल, आतम लखु मतिसीव ॥२१॥

जैसे फलमें गंध, तिल में तेल, काष्ठमें आग, दूध में घी और ईख में गुड है वैसे देह में आत्मा को विचार से देखो ॥२१॥

इति चाणक्ये सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

दोहा-- अधम धनहिं को चाहते, मध्यम धन अरु मान ।

मानहि धन है बडन को, उत्तम चहै मान ॥१॥

अधम धन चाहते हैं, मध्यम धन और मान दोनों, पर उत्तम मान ही चाहते हैं।क्योंकि महात्माओं का धन मान ही है ॥१॥

दोहा-- ऊख वारि पय मूल, पुनि औषधह खायके ।

तथा खाये ताम्बूल, स्नान दान आदिक उचित ॥२॥

ऊख, जल, दूध, पान, फल और औषधि इन वस्तुओं के भोजन करने पर भी स्नान दान आदि क्रिया कर सकते हैं ॥२॥

दोहा-- दीपक तमको खात है, तो कज्जल उपजाय ।

यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥३॥

दिया अंधकार को खाता है और काजल को जन्माता है । सत्य है, जो जैसा अन्न सदा खाता है उसकी वैसेही सन्तति होती है ॥३॥

दोहा-- गुणहिंन औरहिं देइ धन, लखिय जलद जल खाय ।

मधुर कोटि गुण करि जगत, जीवन जलनिधि जाय ॥४॥

हे मतिमान् ! गुणियों को धन दो औरों को कभी मत दो । समुद्र से मेघ के मुख में प्राप्त होकर जल सदा मधुर हो जाता है और पृथ्वी पर चर अचर सब जीवों को जिला कर फिर वही जल कोटि गुण होकर उसी समुद्र में चला जाता है ॥४॥

दोहा-- एक सहस्त्र चाण्डाल सम, यवन नीच इक होय ।

तत्त्वदर्शी कह यवन ते, नीच और नहिं कोय ॥५॥

इतना नीच एक यवन होता है । यवन से बढकर नीच कोई नहीं होता ॥५॥

दोहा-- चिताधूम तनुतेल लगि, मैथुन छौर बनाय ।

तब लौं है चण्डाल सम, जबलों नाहिं नहाय ॥६॥

तेल लगाने पर, स्त्री प्रसंग करने के बाद, और चिता का धुआँ लग जाने पर मनुष्य जब तक स्नान नहीं करता तब तक चाण्डाल रहता है ॥६॥

दोहा-- वारि अजीरण औषधी, जीरण में बलवान ।

भोजन के संग अमृत है, भोजनान्त विषपान ॥७॥

जब तक कि भोजन पच न जाय, इस बीच में पिया हुआ पानी विष है और वही पानी भोजन पच जाने के बाद पीने से अमृत के समान हो जाता है । भोजन करते समय अमृत और उसके पश्चात् विषका काम करता है ॥७॥

दोहा-- ज्ञान क्रिया बिन नष्ट है, नर जो नष्ट अज्ञान ।

बिनु नायक जसु सैनहू, त्यों पति बिनु तिय जान ॥८॥

वह ज्ञान व्यर्थ है कि जिसके अनुसार आचरण न हो और उस मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ है कि जिसे ज्ञान प्राप्त न हो । जिस सेना का कोई सेनापति न हो वह सेना व्यर्थ है और जिसके पति न हो वे स्त्रियाँ व्यर्थ हैं ॥८॥

दोहा--वृध्द समय जो मरु तिया, बन्धु हाथ धन जाय ।

पराधीन भोजन मिलै, अहै तीन दुखदाय ॥९॥

बुढौती में स्त्री का मरना, निजी धन का बन्धुओं के हाथ में चला जाना और पराधीन जीविका रहना, ये पुरुषों के लिए अभाग्य की बात है ॥९॥

दोहा-- अग्निहोत्र बिनु वेद नहिं, यज्ञ क्रिया बिनु दान ।

भाव बिना नहिं सिध्दि है, सबमें भाव प्रधान ॥१०॥

बिना अग्निहोत्र के वेदपाठ व्यर्थ है और दान के बिना यज्ञादि कर्म व्यर्थ हैं । भाव के बिना सिध्दि नहीं प्राप्त होती इसलिए भाव ही प्रधान है ॥१०॥

दोहा-- देव न काठ पाषाणमृत,मूर्ति में नरहाय ।

भाव तहांही देवभल, कारन भाव कहाय ॥११॥

देवता न काठ में, पत्थर में, और न मिट्टी ही में रहते हैं वे तो रहते हैं भाव में । इससे यह निष्कर्ष निकला कि भाव ही सबका कारण है ॥११॥

दोहा-- धातु काठ पाषाण का, करु सेवन युत भाव ।

श्रध्दा से भगवत्कृपा, तैसे तेहि सिध्दि आव ॥१२॥

काठ, पाषाण तथा धातु की भी श्रध्दापूर्वक सेवा करने से और भगवत्कृपा से सिध्दि प्राप्त हो जाती है ॥१२॥

दोहा-- नहीं सन्तोष समान सुख, तप न क्षमा सम आन ।

तृष्णा सम नहिं व्याधि तन, धरम दया सम मान ॥१३॥

शान्ति के समान कोई तप नहीं है, सन्तोष से बढकर कोई सुख नहीं है, तृष्णा से बडी कोई व्याधि नहीं है और दया से बडा कोई धर्म नहीं है ॥१३॥

दोहा-- त्रिसना वैतरणी नदी, धरमराज सह रोष ।

कामधेनु विद्‌या कहिय, नन्दन बन सन्तोष ॥१४॥

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्‌या कामधेनु गौ है और सन्तोष नन्दन वन है ॥१४॥

दोहा-- गुन भूषन है रूप को, कुल को शील कहाय ।

विद्‌या भूषन सिध्दि जन, तेहि खरचत सो पाय ॥१५॥

गुण रूप का श्रृंगार है , शील कुलका भूषण है, सिध्दि विद्‌या का अलंकार है और भोग धन का आभूषण है ॥१५॥

दोहा-- निर्गुण का हत रूप है, हत कुशील कुलगान ।

हत विद्‌याहु असिध्दको, हत अभोग धन धान ॥१६॥

गुण विहीन मनुष्य का रूप व्यर्थ है, जिसका शील ठीक नहीं उसका कुल नष्ट है, जिसको सिध्दि नहीं प्राप्त हो वह उसकी विद्‌या व्यर्थ है और जिसका भोग न किया जाय वह धन व्यर्थ है ॥१६॥

दोहा-- शुध्द भूमिगत वारि है, नारि पतिव्रता जौन ।

क्षेम करै सो भूप शुचि, विप्र तोस सुचि तौन ॥१७॥

जमीन पर पहँचा पानी, पतिव्रता स्त्री, प्रजा का कल्याण करनेवाला राजा और सन्तोषी ब्राह्मण-ये पवित्र माने गये हैं ॥१७॥

दोहा-- असन्तोष ते विप्र हत, नृप सन्तोष तै रव्वारि ।

गनिका विनशै लाज ते, लाज बिना कुल नारि ॥१८॥

असन्तोषी ब्राह्मण, सन्तोषी राजे, लज्जावती वेश्या और निर्लज्ज कुल स्त्रियाँ ये निकृष्ट माने गये हैं ॥१८॥

दोहा-- कहा होत बड वंश ते, जो नर विद्या हीन ।

प्रगट सूरनतैं पूजियत, विद्या त कुलहीन ॥१९॥

यदि मूर्ख का कुल बडा भी हो तो उससे क्या लाभ ? चाहे नीच ही कुल का क्यों न हो, पर यदि वह विद्वान् हो तो देवताओं द्वारा भी पूजा जाता है ॥१९॥

दोहा-- विदुष प्रशंसित होत जग, सब थल गौरव पाय ।

विद्या से सब मिलत है , थल सब सोइ पुजाय ॥२०॥

विद्वान का संसार में प्रचार होता है वह सर्वत्र आदर पाता है । कहने का मतलब यह कि विद्या से सब कुछ प्राप्त हो सकता है और सर्वत्र विद्या ही पूजी जाती है ॥२०॥

दोहा-- संयत जीवन रूप तैं , कहियत बडे कुलीन ।

विद्या बिन सोभै न जिभि, पुहुप गंध ते हीन ॥२१॥

रूप यौवन युक्त और विशाल कुल में उत्पन्न होकर भी मनुष्य यदि विद्याहीन होते हैं तो ये उसी तरह भले नहीं मालूम होते जैसे सुगन्धि रहित टेसू के फूल ॥२१॥

दोहा-- मांस भक्ष मदिरा पियत, मूरख अक्षर हीन ।

नरका पशुभार गृह, पृथ्वी नहिं सहु तीन ॥२२॥

मांसाहारी, शराबी और निरक्षर मूर्ख इन मानवरूपधारी पशुओं से पृथ्वी मारे बोझ के दबी जा रही है ॥२२॥

दोहा-- अन्नहीन राज्यही दहत, दानहीन यजमान ।

मंत्रहीन ऋत्विजन कहँ, क्रतुसम रिपुनहिं आन ॥२३॥

अन्नरहित यज्ञ देश का, मन्त्रहीन यज्ञ ऋत्विजों का और दान विहीन यज्ञ यजमान का नाश कर देता है । यज्ञ के समान कोई शत्रु नहीं है ॥२३॥

इति चाणक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

सोरठा-- मुक्ति चहो जो तात ! विषयन तजु विष सरिस ।

दयाशील सच बात, शौच सरलता क्षमा गहु ॥१॥

हे भाई ! यदि तुम मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विष के समान समझ कर त्याग दो और क्षमा, ऋजुता (कोमलता), दया और पवित्रता इनको अमृत की तरह पी जाओ ॥१॥

दोहा-- नीच अधम नर भाषते, मर्म परस्पर आप ।

ते विलाय जै हैं यथा, मघि बिमवट को साँप ॥२॥

जो लोग आपस के भेद की बात बतला देते हैं वे नराधम उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे बाँबी के भीतर घुसा साँप ॥२॥

दोहा-- गन्ध सोन फल इक्षु धन, बुध चिरायु नरनाह ।

सुमन मलय धातानि किय, काहु ज्ञान गुरुनाह ॥३॥

सोने में सुगंध, ऊँख में फल, चन्दन में फूल, धनी विद्वान और दीर्घजीवी राजा को विधाता ने बनाया ही नहीं । क्या किसी ने उन्हें सलाह भी नहीं दी ? ॥३॥

दोहा-- गुरच औषधि सुखन में, भोजन कहो प्रमान ।

चक्षु इन्द्रिय सब अंग में, शिर प्रधान भी जान ॥४॥

सब औषधियों में अमृत (गुरुच=गिलोय) प्रधान है, सब सुखों में भोजन प्रधान है, सब इन्द्रियों में नेत्र प्रधान है और सब अंगो में मस्तक प्रधान है ॥४॥

दोहा-- दूत वचन गति रंग नहिं, नभ न आदि कहुँ कोय ।

शशि रविग्रहण बखानु जो, नहिं न विदुष किमि होय ॥५॥

आकाश में न कोई दूत जा सकता है, न बातचीत ही हो सकती है, न पहले से किसी ने बता रखा है, न किसी से भेंट ही होती है, ऎसी परिस्थिति में आकाशचारी सूर्य, चन्द्रमा का ग्रहण समय जो पण्डित जानते हैं, वे क्यों कर विद्वान् न माने जायँ ? ॥५॥

दोहा-- द्वारपाल सेवक पथिक, समय क्षुधातर पाय ।

भंडारी, विद्यारथी, सोअत सात जगाय ॥६॥

विद्यार्थी, नौकर, राही, भूखे, भयभीत, भंडारी और द्वारपाल इन सात सोते हुए को भी जगा देना चाहिए ॥६॥

दोहा-- भूपति नृपति मुढमति, त्यों बर्रे ओ बाल ।

सावत सात जगाइये, नहिं पर कूकर व्याल ॥७॥

साँप, राजा, शेर, बर्रे, बालक, पराया कुत्ता और मूर्ख मनुष्य ये सात सोते हों तो इन्हें न जगावें ॥७॥

दोह-- अर्थहेत वेदहिं पढे, खाय शूद्र को धान ।

ते द्विज क्या कर सकता हैं, बिन विष व्याल समान ॥८॥

जिन्होंने धनके लिए विद्या पढी है और शूद्र का अन्न खाते हैं, ऎसे विषहीन साँप के समान ब्राह्मण क्या कर सकेंगे ॥८॥

दोहा--रुष्ट भये भय तुष्ट में, नहीं धनागम सोय ।

दण्ड सहाय न करि सकै का रिसाय करु सोय ॥९॥

जिसके नाराज होने पर कोई डर नहीं है, प्रसन्न होने पर कुछ आमदनी नहीं हो सकती। न वह दे सकता और न कृपा ही कर सकता हो तो उसके रुष्ट होने से क्या होगा ? ॥९॥

दोहा-- बिन बिषहू के साँप सो, चाहिय फने बढाय ।

होउ नहीं या होउ विष, घटाटोप भयदाय ॥१०॥

विष विहीन सर्प का भी चाहिये कि वह खूब लम्बी चौडी फन फटकारे । विष हो या न हो, पर आडम्बर होना ही चाहिय ॥१०॥

दोहा-- प्रातः द्युत प्रसंग से मध्य स्त्री परसंग ।

सायं चोर प्रसंग कह काल गहे सब अड्ग ॥११॥

समझदार लोगों का समय सबेरे जुए के प्रसंग (कथा) में, दोपहर को स्त्री प्रसंग (कथा) में और रात को चोर की चर्चा में जाता है । यह तो हुआ शब्दार्थ, पर भावार्थ इसका यह हैं कि जिसमें जुए की कथा आती है यानी महाभारत । दोपहर को स्त्री प्रसंग यानी स्त्री से सम्बन्ध रखनेवाली कथा अर्थात् रामायण कि जिसमें आदि से अंत तक सीता की तपस्या झलकती है । रात को चोर के प्रसंग अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र की कथा यानी श्रीमद् भागवत कहते सुनते हैं ॥११॥

दोहा-- सुमन माल निजकर रचित, स्वलिखित पुस्तक पाठ ।

धन इन्द्रहु नाशै दिये, स्वघसित चन्दन काठ ॥१२॥

अपने हाथ गूँथकर पहनी माला, अपने हाथ से घिस कर लगाया चन्दन और अपने हाथ लिखकर किया हुआ स्तोत्रपाठ इन्द्र की भी श्री को नष्ट कर देता है ॥१२॥

दोहा-- ऊख शूद्र दधि नायिका, हेम मेदिनी पान ।

तल चन्दन इन नवनको, मर्दनही गुण जान ॥१३॥

ऊख, तिल, शूद्र सुवर्ण, स्त्री, पृथ्वी, चन्दन, दही और पान, ये वस्तुएँ जितनी मर्दन का जाता है, उतनी ही गुणदायक होती हैं ॥१३॥

दोहा-- दारिद सोहत धीरते, कुपट सुभगता पाय ।

लहि कुअन्न उष्णत्व को, शील कुरूप सुहाय ॥१४॥

धैर्य से दरिद्रता की, सफाई से खराब वस्त्र की, गर्मी से कदन्न की, और शील से कुरूपता भी सुन्दर लगती है ॥१४॥

इति चाणक्ये नवमोऽध्यायः ॥९॥

दोहा-- हीन नहीं धन हीन है, धन थिर नाहिं प्रवीन ।

हीन न और बखानिये, एइद्याहीन सुदीन ॥१॥

धनहीन मनुष्य हीन नहीं कहा जा सकता वही वास्तव में धनी है । किन्तु जो मनुष्य विद्यारुपी रत्न से हीन है, वह सभी वस्तुओं से हीन है ॥१॥

दोहा-- दृष्टिसोधि पग धरिय मग, पीजिय जल पट रोधि ।

शास्त्रशोधि बोलिय बचन, करिय काज मन शोधि ॥२॥

आँख से अच्छी तरह देख-भाल कर पैर धरे, कपडे से छान कर जल पिये, शास्त्रसम्मत बात कहे और मन को हमेशा पवित्र रखे ॥२॥

दोहा-- सुख चाहै विद्या तजै सुख तजि विद्या चाह ।

अर्थिहि को विद्या कहाँ, विद्यार्थिहिं सुख काह ॥३॥

जो मनुष्य विषय सुख चाहता हो, वह विद्या के पास न जाय । जो विद्या का इच्छुक हो, वह सुख छोडे । सुखार्थी को विद्या और विद्यार्थी को सुख कहाँ मिल सकता है ॥३॥

दोहा-- काह न जाने सुकवि जन, करै काह नहिं नारि ।

मद्यप काह न बकि सकै, काग खाहिं केहि वारि ॥४॥

कवि क्या वस्तु नहीं देख पाते ? स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ? शराबी क्या नहीं बक जाते ? और कौवे क्या नहीं खा जाते ? ॥े॥

छं० -- बनवै अति रंकन भूमिपती अरु भूमिपतीनहुँ रंक अति ।

धनिकै धनहीन फिरै करती अधनीन धनी विधिकेरि गती ॥५॥

विधाता कङ्गाल को राजा, राजा को कङ्गाल, धनी को निर्धन और निर्धन को धनी बनाता ही रहता है ॥५॥

दोहा-- याचक रिपु लोभीन के, मूढनि जो शिषदान ।

जार तियन निज पति कह्यो, चोरन शशि रिपु जान ॥६॥

लोभी का शत्रु है याचक, मूर्ख का शत्रु है उपदेश देनेवाला, कुलटा स्त्री का शत्रु है उसका पति और चोरों का शत्रु चन्द्रमा ॥६॥

दोहा-- धर्मशील गुण नाहिं जेहिं, नहिं विद्‌या तप दान ।

मनुज रूप भुवि भार ते, विचरत मृग कर जान ॥७॥

जिस मनुष्य में न विद्‌या है, न तप है, न शील है और न गुण है ऎसे मनुष्य पृथ्वी के बोझ रूप होकर मनुष्य रूप में पशु सदृश जीवन-यापन करते हैं ॥७॥

सोरठा-- शून्य हृदय उपदेश, नाहिं लगै कैसो करिय ।

बसै मलय गिरि देश, तऊ बांस में बास नहिं ॥८॥

जिनकी अन्तरात्मा में कुछ भी असर नहीं करता । मलयाचल को किसी का उपदेश कुछ असर नहीं करता । मलयाचल के संसर्ग से और वृक्ष चन्दन हो जाते हैं, पर बाँस चन्दन नहीं होता ॥८॥

दोहा-- स्वाभाविक नहिं बुध्दि जेहि, ताहि शास्त्र करु काह ।

जो नर नयनविहीन हैं, दर्पण से करु काह ॥९॥

जिसके पास स्वयं बुध्दि नहीं है, उसे क्या शास्त्र सिखा देगा । जिसकी दोनों आँखे फूट गई हों, क्या उसे शीशा दिखा देगा ? ॥९॥

दोहा-- दुर्जन को सज्जन करन, भूतल नहीं उपाय ।

हो अपान इन्द्रिय न शचि, सौ सौ धोयो जाय ॥१०॥

इस पृथ्वीतल में दुर्जन को सज्जन बनाने का कोई यत्न है ही नहीं । अपान प्रदेश को चाहे सैकडों बार क्यों न धोया जाय फिर भी वह श्रेष्ठ इन्द्रिय नहीं हो सकता ॥१०॥

दोहा-- सन्त विरोध ते मृत्यु निज, धन क्षय करि पर द्‌वेष ।

राजद्‌वेष से नसत है, कुल क्षय कर द्‌विज द्‌वेष ॥११॥

बडे बूढो से द्‌वेष करने पर मृत्यु होती है । शत्रु से द्‌वेष करने पर धन का नाश होता है । राजा से द्‌वेष करने पर सर्वनाश हो जाता है और ब्राह्‌मण से द्‌वेष करने पर कुल का ही क्षय हो जाता है ॥११॥

छन्द-- गज बाघ सेवित वृक्ष धन वन माहि बरु रहिबो करै ।

अरु पत्र फल जल सेवनो तृण सेज वरु लहिबो करै ॥

शतछिद्र वल्कल वस्त्र करिबहु चाल यह गहिबो करै ।

निज बन्धू महँ धनहीन ह्वैं नहिं जीवनो चहिबो करै ॥१२॥

बाघ और बडॅे-बडॅे हाथियों के झुण्ड जिस वन में रहते हो उसमें रहना पडे, निवास करके पके फल तथा जल पर जीवनयापन करना पड जाय, घास फूस पर सोना पडे और सैकडो जगह फटे वस्त्र पहनना पडे तो अच्छा पर अपनी विरादरी में दरिद्र होकर जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥१२॥

छन्द-- विप्र वृक्ष हैं मूल सन्ध्या वेद शाखा जानिये ।

धर्म कर्म ह्वै पत्र दोऊ मूल को नहिं नाशिये ॥

जो नष्ट मूल ह्वै जाय तो कुल शाख पात न फूटिये ।

यही नीति सुनीति है की मल रक्षा कीजिये ॥१३॥

ब्राह्मण वृक्ष के समान है, उसकी जड है संध्या, वेद है शाखा और कर्म पत्ते हैं । इसलिए मूल (सन्ध्या) की यत्न पूर्वक रक्षा करो । क्योंकी जब जड ही कट जायगी तो न शाखा रहेगी और न पत्र ही रहेगा ॥१३॥

दोहा-- लक्ष्मी देवी मातु हैं, पिता विष्णु सर्वेश ।

कृष्णभक्त बन्धू सभी, तीन भुवन निज देश ॥१४॥

भक्त मनुष्य की माता हैं लक्ष्मीजी, विष्णु भगवान पिता हैं , विष्णु के भक्त भाई बन्धु हैं और तीनों भुवन उसका देश है ॥१४॥

दोहा-- बहु विधि पक्षी एक तरु, जो बैठे निशि आय ।

भोर दशो दिशि उडि चले, कह कोही पछिताय ॥१५॥

विविध वर्ण (रंग) के पक्षी एक ही वृक्ष पर रात भर बसेरा करते हैं और दशों दिशाओं में उड जाते हैं । यही दशा मनुष्यों की भी है, फिर इसके लिये सन्ताप करने की क्या जरूरत ? ॥१५॥

दोहा-- बुध्दि जासु है सो बली, निर्बुध्दिहि बल नाहिं ।

अति बल हाथीहिं स्यारलघु, चतुर हतेसि बन माहिं ॥१६॥

जो बावली, कुआँ, तालाब, बगीचा और देवमन्दिरों के नष्ट करने में नहीं हिचकता, ऎसे ब्राह्मण को ब्राह्मण न कहकर म्लेच्छ कहा जाता है ॥१६॥

सोरठा-- परनारी रत जोय, जो गुरु सुर धन को हरै ।

द्विज चाण्डालहोय, विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥१७॥

जो देवद्रव्य और गुरुद्रव्य अपहरण करता, परायी स्त्री के साथ दुराचार करता और लोगों की वृत्ति पर ही जो अपना निर्वाह करता है, ऎसे ब्राह्मण को चाण्डाल कहा जाता है ॥१७॥

सवैया-- मतिमानको चाहिये वे धन भोज्य सुसंचहिं नाहिं दियोई करैं

ते बलि विक्रम कर्णहु कीरति, आजुलों लोग कह्योई करैं ॥

चिरसंचि मधु हम लोगन को बिनु भोग दिये नसिबोई करैं ।

यह जानि गये मधुनास दोऊ मधुमखियाँ पाँव घिसोई करैं ॥१८॥

आत्म-कल्याण की भावनावालों को चाहिये कि अपनी साधारण आवश्यकता से अधिक बचा हुआ अन्न वस्त्र या धन दान कर दिया करें, जोडे नहीं । दान ही की बदौलत कर्ण बलि और महाराज विक्रमादित्य की कीर्ति आज भी विद्यमान है । मधुमक्खियों को देखिये वे यही सोचती हुई अपने पैर रगडती हैं कि "हाय ! मैंने दान और भोग से रहित मधु को बहुत दिनों में इकट्ठा किया और वह क्षण में दुसरा ले गया " ॥१८॥

इति चाणक्ये एकदशोऽध्यायः ॥११॥

स० सानन्दमंदिरपण्डित पुत्र सुबोल रहै तिरिया पुनि प्राणपियारी

इच्छित सतति और स्वतीय रती रहै सेवक भौंह निहारी ॥

आतिथ औ शिवपूजन रोज रहे घर संच सुअन्न औ वारी ।

साधुनसंग उपासात है नित धन्य अहै गृह आश्रम धारी ॥१॥

आनन्द से रहने लायक घर हो, पुत्र बुध्दिमान हो, स्त्री मधुरभाषिणी हो, घर आये हुए अतिथियों का सत्कार हो, सेवक आज्ञाकारी हो, घर आये हुए अतिथियों का सत्कार हो, प्रति दिन शिवजी का पूजन होता रहे और सज्जनों का साथ हो तो फिर वह गृहस्थाश्रम धन्य है ॥१॥

दोहा-- दिया दयायुत साधुसो, आरत विप्रहिं जौन ।

थोरी मिलै अनन्त ह्वै, द्विज से मिलै न तौन ॥२॥

जो मनुष्य श्रध्दापूर्वक और दयाभाव से दीन-दुखियों तथा ब्राह्मणों को थोडा भी दान दे देता है तो वह उसे अनन्तगुणा होकर उन दीन ब्राह्मणों से नहीं बल्कि ईश्वर के दरबार से मिलता है ॥२॥

कविता- दक्षता स्वजनबीच दया परजन बीच शठता सदा ही रहे बीच दुरजन के । प्रीति साधुजन में शूरता सयानन में क्षमा पूर धुरताई राखे फेरि बीच नारिजन के । ऎसे सब काल में कुशल रहैं जेते लोग लोक थिति रहि रहे बीच तिनहिन के ॥३॥

जो मनुष्य अपने परिवार में उदारता, दुर्जनों के साथ शठता, सज्जनों से प्रेम, दुष्टों में अभिमान, विद्वानों में कोमलता, शत्रुओं में वीरता, गुरुजनों में क्षमा और स्त्रियों में धूर्तता का व्यवहार करते हैं । ऎसे ही कलाकुशल मनुष्य संसार में आनंद के साथ रह सकते हैं ॥३॥

छ०-- यह पाणि दान विहीन कान पुराण वेद सुने नहीं ।

अरु आँखि साधुन दर्शहीन न पाँव तीरथ में कहीं ॥

अन्याय वित्त भरो सुपेट उय्यो सिरो अभिमानही ।

वपु नीच निंदित छोड अरे सियार सो बेगहीं ॥४॥

जिसके दोनों हाथ दानविहीन हैं, दोनों कान विद्याश्रवण से परांगमुख हैं, नेत्रसज्जनों का दर्शन नहीं करते और पैर तिर्थों का पर्यटन नहीं करते । जो अन्याय से अर्जित धन से पेट पालते हैं और गर्व से सिर ऊँचा करके चलते हैं, ऎसे मनुष्यों का रूप धारण किये हुए ऎ सियार ! तू झटपट अपने इस नीच और निन्दनीय शरीर को छोड दे ॥४॥

छं०-- जो नर यसुमतिसुत चरणन में भक्ति हृदय से कीन नहीं ।

जो राधाप्रिय कृष्ण चन्द्र के गुण जिह्वा नाहिं कहीं ॥

जिनके दोउ कानन माहिं कथारस कृष्ण को पीय नहीं ।

कीर्तन माहिं मृदंग इन्हे धिक्२एहि भाँति कहेहि कहीं ॥५॥

कीर्तन के समय बजता हुआ मृदंग कहता है कि जिन मनुष्यों को श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरण कमलों में भक्ति नहीं है श्रीराधारानी के प्रिय गुणों के कहने में जिसकी रसना अनुरक्त नहीं और श्रीकृष्ण भगवान् की लीलाओं को सुनने के लिए जिसके कान उत्सुक नहीं हैं । ऎसे लोगों को धिक्कार है, धिक्कार है ॥५॥

छं०-- पात न होय करीरन में यदि दोष बसन्तहि कान तहाँ है ।

त्यों जब देखि सकै न उलूकदिये तहँ सूरज दोष कहाँ है ।

चातक आनन बूँदपरै नहिं मेघन दूषन कौन यहाँ है ॥

जो कछु पूरब माथ लिखाविधि मेटनको समरत्थ कहाँ है ॥६॥

यदि करीर पेड में पत्ते नहीं लगते तो बसन्त ऋतु का क्या दोष ? उल्लू दिन को नहीं देखता तो इसमें सूर्य का क्या दोष ? बरसात की बूँदे चातक के मुख में नही गिरती तो इसमें मेघ का क्या दोष ? विधाता ने पहले ही ललाट में जो लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है ॥६॥

च० ति०- सत्संगसों खलन साधु स्वभाव सेवै ।

साधू न दुष्टपन संग परेहु लेवै ॥

माटीहि बास कछु फूल न धार पावै ।

माटी सुवास कहुँ फूल नहिं बसावै ॥७॥

सत्संग से दुष्ट सज्जन हो जाते हैं । पर सज्जन उनके संग से दुष्ट नहीं होते । जैसे फूल की सुगंधि को मिट्टी अपनाती है, पर फूल मिट्टी की सुगंधि को नहीं अपनाते ॥७॥

दोहा-- साधू दर्शन पुण्य है, साधु तीर्थ के रूप ।

काल पाय तीरथ फलै, तुरतहि साधु अनूप ॥८॥

सज्जनों का दर्शन बडा पुनीत होता है । क्योंकि साधुजन तीर्थ के समान रहते हैं । बल्कि तीर्थ तो कुछ समय बाद फल देते हैं पर सज्जनों का सत्संग तत्काल फलदायक है ॥८॥

कवित्त-- कह्यो या नगर में महान है कौन ? विप्र ! तारन के वृक्षन के कतार हैं । दाता कहो कौन हैं ? रजक देत साँझ आनि धोय शुभ वस्त्र को जो देत सकार है । दक्ष कहौ कौन है ? प्रत्यक्ष सबहीं हैं दक्ष रहने को कुशल परायो धनदार कौन है ? कैसे तुम जीवत कहो मोसों मीत विष कृमिन्याय हैं । कैसे तुम जीवत बताय कहो मोसों मीत विष कृमिन्याय कर लीजै निराधार है ॥९॥

कोई पथिक किसी नगर में जाकर किसी सज्जन से पुछता है हे भाई ! इस नगर में कौन बडा है ? उसने उत्तर दिया- बडे तो ताड के पेड हैं । (प्रश्न) दता कौन है ? (उत्तर) धोबी, जो सबेरे कपडे ले जाता और शाम को वापस दे जाता है । (प्रश्न) यहाँ चतुर कौन है ? (उत्तर) पराई दौलत ऍंठने में यहाँ सभी चतुर हैं । (प्रश्न) तो फिर हे सखे ! तुम यहाँ जीते कैसे हो ? (उत्तर) उसी तरह जीता हूँ जैसे कि विष का कीडा विष में रहता हुआ भी जिन्दा रहता है ॥९॥

दोहा-- विप्रचरण के उद्क से, होत जहाँ नहिं कीच ।

वेदध्वनि स्वाहा नहीं, वे गृह मर्घट नीच ॥१०॥

जिस घर में ब्राम्हण के पैर धुलने से कीचड नहीं होता, जिसके यहाँ वेद और शास्त्रों की ध्वनि का गर्जन नहीं और जिस घर में स्वाहा स्वधा का कभी उच्चारण नहीं होता, ऐसे घरों को श्मशान के तुल्य समझना चाहिए ॥१०॥

सोरठा-- सत्य मातु पितु ज्ञान, सखा दया भ्राता धरम ।

तिया शांति सुत जान छमा यही षट् बन्धु मम ॥११॥

कोई ज्ञानी किसी के प्रश्न का उत्तर देता हुआ कहता है कि सत्य मेरी माता है, ज्ञान पिता है धर्म भाई है, दया मित्र है, शांति स्त्री है और क्षमा पुत्र है, ये ही मेरे छः बान्धव हैं ॥११॥

सोरठा-- है अनित्य यह देह, विभव सदा नाहिं नर है ।

निकट मृत्यु नित हेय, चाहिय कीन संग्रह धरम ॥१२॥

शरीर क्षणभंगोर है, धन भी सदा रहनेवाला नही है । मृत्यु बिलकुल समीप वेद्यमान है। इसलिए धर्म का संग्रह करो ॥१२॥

दोहा-- पति उत्सव युवतीन को, गौवन को नवघास ।

नेवत द्विजन को हे हरि, मोहिं उत्सव रणवास ॥१३॥

ब्राह्मण का उत्सव है निमन्त्रण, गौओं का उत्सव है नई घास । स्त्री का उत्सव है पति का आगमन, किन्तु हे कृष्ण ! मेरा उत्सव है युध्द ॥१३॥

दोहा-- पर धन माटी के सरिस, परतिय माता भेष ।

आपु सरीखे जगत सब, जो देखे सो देख ॥१४॥

जो मनुष्य परायी स्त्री को माता के समान समझता, पराया धन मिट्टी के ढेले के समान मानता और अपने ही तरह सब प्राणियों के सुख-दुःख समझता है, वही पण्डित है ॥१४॥

कविता- धर्म माहिं रुचि मुख मीठी बानी दाह वचन शक्तिमित्र संग नहिं ठगने बान है । वृध्दमाहिं नम्रता अरु मन मं गन्भीरता शुध्द है आचरण गुण विचार विमल हैं । शास्त्र का विशैष ज्ञान रूप भी सुहावन है शिवजी के भजन का सब काल ध्यान है । कहे पुष्पवन्त ज्ञानी राघव बीच मानों सब ओर इक ठौर कहिन को न मान है ॥१५॥

वशिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजी से कहते हैं- हे राघव ! धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान में उत्साह, मित्रों में निश्छल व्यवहार, गुरुजनों के समझ नम्रता, चित्त में गम्भीरता, आचार में पवित्रता, शास्त्रों में विज्ञता, रूप में सुन्दरता और शिवजी में भक्ति, ये गुण केवल आप ही में हैं ॥१५॥

कवित्त-कल्पवृक्ष काठ अचल सुमेरु चिन्तामणिन भीर जाती जाजि जानिये । सूरज में उष्णाता अरु कलाहीन चन्द्रमा है सागरहू का जल खारो यह जानिये । कामदेव नष्टतनु अरु राजा बली दैत्यदेव कामधेनु गौ को भी पशु मानिये । उपमा श्रीराम की इन से कुछ तुलै ना और वस्तु जिसे उपमा बखानिये ॥१६॥

कल्पवृक्ष काष्ठ है, सुमेरु अचल है, चिन्तामणि पत्थर है, सूर्य की किरणें तीखी हैं, चन्द्रमा घटता-बढता है, समुद्र खारा है, कामदेव शरीर रहित है, बलि दैत्य है और कामधेनु पशु है । इसलिए इनके साथ तो मैं आपकी तुलना नहीं कर सकता । तब हे रघुपते ? किसके साथ आपकी उपमा दी जाय ॥१६॥

दोहा-- विद्या मित्र विदेश में, घरमें नारी मित्र ।

रोगिहिं औषधि मित्र हैं, मरे धर्म ही मेत्र ॥१७॥

प्रवास में विद्या हित करती है, घर में स्त्री मित्र है, रोगग्रस्त पुरुष का हित औषधि से होता है और धर्म मरे का उपकार करता है ॥१७॥

दोहा-- राजसुत से विनय अरु, बुध से सुन्दर बात ।

झुठ जुआरिन कपट, स्त्री से सीखी जात ॥१८॥

मनुष्य को चाहिए कि विनय (तहजीब) राजकुमारों से, अच्छी अच्छी बातें पण्डितों से झुठाई जुआरियों से और छलकपट स्त्रियों से सीखे ॥१८॥

दोहा-- बिन विचार खर्चा करें, झगरे बिनहिं सहाय ।

आतुर सब तिय में रहै, सोइ न बेगि नसाय ॥१९॥

बिना समझे-बूझे खर्च करनेवाला अनाथ, झगडालू, और सब तरह की स्त्रियों के लिए बेचैन रहनेवाला मनुष्य देखते-देखते चौपट हो जाता है ॥१९॥

दोहा-- नहिं आहार चिन्तहिं सुमति, चिन्तहि धर्महि एक ।

होहिं साथ ही जनम के, नरहिं अहार अनेक ॥२०॥

विद्वान् को चाहिए कि वह भोजनकी चिन्ता न किया करे । चिन्ता करे केवल धर्म की क्योंकि आहार तो मनुष्य के पैदा होने के साथ ही नियत हो जाया करता है ॥२०॥

दोहा-- लेन देन धन अन्न के, विद्या पढने माहिं ।

भोजन सखा विवाह में, तजै लाज सुख ताहिं ॥२१॥

जो मनुष्य धन तथा धान्य के व्यवहार में, पढने-लिखते में, भोजन में और लेन-देन में निर्लज्ज होता है, वही सुखी रहता है ॥२१॥

दोहा-- एक एक जल बुन्द के परत घटहु भरि जाय ।

सब विद्या धन धर्म को, कारण यही कहाय ॥२२॥

धीरे-धीरे एक एक बूँद पानी से घडा भर जाता है । यही बात विद्या, धर्म और धन के लिए लागू होती है । तात्पर्य यह कि उपयुक्त वस्तुओं के संग्रह में जल्दी न करे । करता चले धीरे-धीरे कभी पुरा हो ही जायेगा ॥२२॥

दोहा-- बीत गयेहु उमिर के, खल खलहीं राह जाय ।

पकेहु मिठाई गुण कहूँ, नाहिं हुनारू पाय ॥२३॥

अवस्था के ढल जाने पर भी जो खल बना रहता है वस्तुताः वही खल है । क्योंकि अच्छी तरह पका हुआ इन्द्रापन मीठापन को नहीं प्राप्त होता ॥२३॥

इति चाणक्ये द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

दोहा- वरु नर जीवै मुहूर्त भर, करिके शुचि सत्कर्म ।

नहिं भरि कल्पहु लोक दुहुँ, करत विरोध अधर्म ॥१॥

मनुष्य यदि उज्वल कर्म करके एक दिन भी जिन्दा रहे तो उसका जीवन सुफल है । इसके बदले इहलोक और परलोक इन दोनों के विरुध्द कार्य करके कल्प भर जिवे तो वह जीना अच्छा नहीं है ॥१॥

दोहा-- गत वस्तुहि सोचै नहीं, गुनै न होनी हार ।

कार्य करहिं परवीन जन आय परे अनुसार ॥२॥

जो बात बीत गयी उसके लिए सोच न करो और न आगे होनेवाली के ही लिए चिन्ता करो । समझदार लोग सामने की बात को ही हल करने की चिन्ता करते हैं ॥२॥

दोहा-- देव सत्पुरुष औ पिता, करहिं सुभाव प्रसाद ।

स्नानपान लहि बन्धु सब, पंडित पाय सुवाद ॥३॥

देवता, भलेमानुष और बाप ये तीन स्वभाव देखकर प्रसन्न होते हैं । भाई वृन्द स्नान और पान से साथ वाक्य पालन से पण्डित लोग खुश होते है ॥३॥

दोहा-- आयुर्दल धन कर्म औ, विद्या मरण गनाय ।

पाँचो रहते गर्भ में जीवन के रचि जाय ॥४॥

आयु, कर्म, सम्पत्ति, विद्या और मरण ये पाँच बातें तभी तै हो जाती हैं, जब कि मनुष्य गर्भ में ही रहता है ॥४॥

दोहा-- अचरज चरित विचित्र अति, बडे जनन के आहि ।

जो तृण सम सम्पति मिले, तासु भार नै जाहिं ॥५॥

ओह ! महात्माओं के चरित्र भी विचित्र होते हैं । वैसे तो ये लक्ष्मी को तिनके की तरह समझते हैं और जब वह आ ही जाती है तो इनके भार से दबकर नम्र हो जाते हैं ॥५॥

दोहा-- जाहि प्रीति भय ताहिंको, प्रीति दुःख को पात्र ।

प्रीति मूल दुख त्यागि के, बसै तबै सुख मात्र ॥६॥

जिसके हृदय में स्नेह (प्रीति) है, उसीको भय है । जिसके पास स्नेह है, उसको दुःख है । जिसके हृदय में स्नेह है, उसी के पास तरह-तरह के दुःख रहते हैं, जो इसे त्याग देता है वह सुख से रहता है ॥६॥

दोहा-- पहिलिहिं करत उपाय जो, परेहु तुरत जेहि सुप्त ।

दुहुन बढत सुख मरत जो, होनी गुणत अगुप्त ॥७॥

जो मनुष्य भविष्य में आनेवाली विपत्तिसे होशियार है और जिसकी बुध्दि समय पर काम कर जाती है ये दो मनुष्य आनंद से आगे बढते जाते हैं । इनके विपरीत जो भाग्य में लिखा होगा वह होगा, जो यह सोचकर बैठनेवाले हैं, इनका नाश निश्चित है ।

दोहा-- नृप धरमी धरमी प्रजा, पाप पाप मति जान ।

सम्मत सम भूपति तथा, परगट प्रजा पिछान ॥८॥

राजा यदि धर्मात्मा होता तो उसकी प्रजा भी धर्मात्मा होती है, राजा पापी होता है तो उसकी प्रजा भी पापी होती है, सम राजा होता है तो प्रजा भी सम होती है । कहने का भाव यह कि सब राजा का ही अनुसरण करते है । जैसा राजा होगा, उसकी प्रजा भी वैसी होगी ॥८॥

दोहा-- जीवन ही समुझै मरेउ, मनुजहि धर्म विहीन ।

नहिं संशय निरजीव सो, मरेउ धर्म जेहि कीन ॥९॥

धर्मविहीन मनुष्य को मैं जीते मुर्दे की तरह मानता हुँ । जो धर्मात्मा था, पर मर गया तो वह वास्तव में दीर्घजीवी था ॥९॥

दोहा-- धर्म, अर्थ, अरु, मोक्ष, न एको है जासु ।

अजाकंठ कुचके सरिस, व्यर्थ जन्म है तासु ॥१०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों में से एक पदार्थ भी जिसके पास नहीं है, तो बकरी के गले में लटकनेवाले स्तनों के समान जन्म ही निरर्थक है ॥१०॥

दोहा-- और अगिन यश दुसह सो, जरि जरि दुर्जन नीच ।

आप न तैसी करि सकै, तब तिहिं निन्दहिं बीच ॥११॥

नीच प्रकृति के लोग औरों के यशरूपी अग्नि से जलते रहते हैं उस पद तक तो पहुँचने की सामर्थ्य उनमें रहती नहीं । इसलिए वे उसकी निन्दा करने लग जाते हैं ॥११॥

दोहा-- विषय संग परिबन्ध है, विषय हीन निर्वाह ।

बंध मोक्ष इन दुहुन को कारण मनै न आन ॥१२॥

विषयों में मन को, लगाना ही बन्धन है और विषयों से मन को हटाना मुक्ति है । भाव यह कि मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का हेतु है ॥१२॥

दोहा-- ब्रह्मज्ञान सो देह को, विगत भये अभिमान ।

जहाँ जहाँ मन जाता है, तहाँ समाधिहिं जान ॥१३॥

परमात्माज्ञान से मनुष्य का जब देहाभिमान गल जाता है तो फिर जहाँ कहीं भी उसका मन जाता है तो उसके लिए सर्वत्र समाधि ही है ॥१३॥

दोहा-- इच्छित सब सुख केहि मिलत, जब सब दैवाधीन ।

यहि ते संतोषहिं शरण, चहै चतुर कहँ कीन ॥१४॥

अपने मन के अनुसार सुख किसे मिलता है । क्योंकि संसार का सब काम दैव के अधीन है । इसीलिए जितना सुख प्राप्त हो जाय, उतने में ही सन्तुष्ट रहो ॥१४॥

दोहा-- जैसे धेनु हजार में, वत्स जाय लखि मात ।

तैसे ही कीन्हो करम, करतहि के ढिग जात ॥१५॥

जैसे हजारों गौओं में बछडा अपनी ही माँ के पास जाता है । उसा तरह प्रत्येक मनुष्य का कर्म (भाग्य) अपने स्वामी के ही पास जा पहुँचता है ॥१५॥

दोहा-- अनथिर कारज ते न सुख, जन औ वन दुहुँ माहिं ।

जन तेहि दाहै सङ्ग ते, वन असंग ते दाहि ॥१६॥

जिसका कार्य अव्यवस्थित रहता है, उसे न समाज में सुख है, न वन में । समाज में वह संसर्ग से दुःखी रहता है तो वन में संसर्ग त्याग से दुखी रहेगा ॥१६॥

दोहा-- जिमि खोदत ही ते मिले, भूतल के मधि वारि ।

तैसेहि सेवा के किये, गुरु विद्या मिलि धारि ॥१७॥

जैसे फावडे से खोदने पर पृथ्वी से जल निकल आता है । उसी तरह किसी गुरु के पास विद्यमान विद्या उसकी सेवा करने से प्राप्त हो जाती है ॥१७॥

दोहा-- फलासिधि कर्म अधीन है, बुध्दि कर्म अनुसार ।

तौहू सुमति महान जन, करम करहिं सुविचार ॥१८॥

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य को कर्मानुसार फल प्राप्त होता है और बुध्दि भी कर्मानुसार ही बनती है । फिर भी बुध्दिमान् लोग अच्छी तरह समझ-बूझ कर ही कोई काम करते हैं ॥१८॥

दोहा-- एक अक्षरदातुहु गुरुहि, जो नर बन्दे नाहिं ।

जन्म सैकडों श्वान ह्वै, जनै चण्डालन माहिं ॥१९॥

एक अक्षर देनेवाले को भी जो मनुष्य अपना गुरु नहीं मानता तो वह सैकडों बार कुत्ते की योनि में रह-रह कर अन्त में चाण्डाल होता है ॥१९॥

दोहा-- सात सिन्धु कल्पान्त चलु, मेरु चलै युग अन्त ।

परे प्रयोजन ते कबहुँ, नहिं चलते हैं सन्त ॥२०॥

युग का अन्त हो जाने पर सुमेरु पर्वत डिग जाता है । कल्प का अन्त होने पर सातो सागर भी चंचल हो उठते हैं, पर सज्जन लोग स्वीकार किये हुए मार्ग से विचलित नहीं होते ॥२०॥

म० छ० - अन्न बारि चारु बोल तीनि रत्न भू अमोल ।

मूढ लोग के पषान टूक रत्न के पषान ॥२१॥

सच पूछो तो पृथ्वी भर में तीन ही रत्न हैं--अन्न, जल और मीठ-मीठी बातें । लेकिन बेवकूफ लोग पत्थर के टुकडों को ही रत्न मानते हैं ॥२१॥

इति चाणक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

निर्धनत्व दुःख बन्ध और विपत्ति सात ।

है स्वकर्म वृक्ष जात ये फलै धरेक गात ॥१॥

मनुष्य अपने द्वारा पल्लवित अपराध रूपी वृक्ष के ये ही फल फलते हैं--दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन (कैद) और व्यसन ॥१॥

फेरि वित्त फेरि मित्त, फेरि तो धराहु नित्त ।

फेरि फेरि सर्व एह, ये मानुषी मिलै न देह ॥२॥

गया हुआ धन वापस मिल सकता है, रूठा हुआ मित्र भी राजी किया जा सकता है, हाथ से निकली हुई स्त्री भी फिर वापस आ सकती है, और छीनी हुई जमीन भी फिर मिल सकती है, पर गया हुआ यह शरीर वापस नहीं मिल सकता ॥२॥

एक ह्वै अनेक लोग वीर्य शत्रु जीत योग ।

मेघ धारि बारि जेत घास ढेर बारि देत ॥३॥

बहुत प्राणियोंका सङ्गठित बल शत्रु को परास्त कर देता है, प्रचण्ड वेग के साथ बरसते हुए मेघ को सङ्गठन के बल से क्षुद्र तिनके हरा देते हैं ॥३॥

थोर तेल बारि माहिं । गुप्तहू खलानि माहिं ।

दान शास्त्र पात्रज्ञानि । ये बडे स्वभाव आहि ॥४॥

जल में तेल, दुष्ट मनुष्य में कोई गुप्त बात, सुपात्र में थोडा भी दान और समझदार मनुष्य के पास शास्त्र, ये थोडे होते हुए भी पात्र के प्रभाव से तुरन्त फैल जाते हैं ॥४॥

धर्म वीरता मशान । रोग माहिं जौन ज्ञान ।

जो रहे वही सदाइ । बन्ध को न मुक्त होइ ॥५॥

कोई धार्मिक आख्यान सुनने पर, श्मशान में और रुग्णावस्था में मनुष्य की जैसी बुध्दि रहती है, वैसी यदि हमेशा रहे तो कौन मोक्षपद न प्राप्त कर ले ? ॥५॥

आदि चूकि अन्त शोच । जो रहै विचारि दोष ।

पूर्वही बनै जो वैस । कौन को मिले न ऎश ॥६॥

कोई बुरा काम करने पर पछतावे के समय मनुष्य की जैसी बुध्दि रहती है, वैसी यदि पहले ही से रहे तो कौन मनुष्य उन्नत न हो जाय ॥६॥

दान नय विनय नगीच शूरता विज्ञान बीच ।

कीजिये अचर्ज नाहिं, रत्न ढेर भूमि माहिं ॥७॥

दान, ताप, वीरता, विज्ञान और नीति, इनके विषय में कभी किसी को विस्मित होना ही नहीं चाहिये । क्योंकि पृथ्वी में बहुत से रत्न भरे पडे हैं ॥७॥

दूरहू बसै नगीच, जासु जौन चित्त बीच ।

जो न जासु चित्त पूर । है समीपहूँ सो दूर ॥८॥

जो (मनुष्य) जिसके हृदय में स्थान किये है, वह दुर रहकर भी दूर नहीं है । जो जिसके हृदय में नहीं रहता, वह समीप रहने पर भी दूर है ॥८॥

जाहिते चहे सुपास, मीठी बोली तासु पास ।

व्याध मारिबे मृगान, मंत्र गावतो सुगान ॥९॥

मनुष्य को चाहिए कि जिस किसी से अपना भला चाहता हो उससे हमेशा मीठी बातें करे । क्योंकि बहेलिया जब हिरन का शिकार करने जाता है तो बडे मीठे स्वर से गाता है ॥९॥

अति पास नाश हेत, दूरहू ते फलन देत ।

सेवनीय मध्य भाग, गुरु, भूप नारि आग ॥१०॥

राजा, अग्नि, गुरु, और स्त्रियाँ-इनके पास अधिक रहने पर विनाश निश्चित है और दूर रहा जाय तो कुछ मतलब नहीं निकलता । इसलिए इन चारों की आराधना ऎसे करे कि न ज्यादा पास रहे न ज्यादा दूर ॥१०॥

अग्नि सर्प मूर्ख नारि, राजवंश और वारि ।

यत्न साथ सेवनीय, सद्य ये हरै छ जीय ॥११॥

आग, पानी, मूर्ख, नारी और राज-परिवार इनकी यत्नके साथ आराधना करै । क्योंकि ये सब तुरन्त प्राण लेने वाले जीव हैं ॥११॥

' 3 37 - & & "

(! (t I , > _(= T *+/*

$ > I ' / =O , = N= L* B = , : [=

&P7 &